RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-05
May-2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में साहित्य, समाज और संस्कृति

डॉ. कोल्हे डी.बी.

हिन्दी विभाग न्यू आर्टस् कामर्स अण्ड सायन्स कॉलेज अहमदनगर– ४१४००१ महाराष्ट्र

मनुष्य एक सामाजिक प्राणि है । भाषा मनुष्य के लिए ईश्वरीय वरदान है । भाषा ही वह माध्यम है । जिसके द्वारा व्यक्ति अपने विचारों और भावनाओं को सहजतः अभिव्यक्त कर सकता है । वैश्विक परिदृश्य में भाषा ही वह कड़ी है जो पारस्परिक संपर्क को बताये रखने में अहम भूमिका का निर्वाह करती है । भाषा में ही वह शक्ति है जो समाज और संस्कृतिक संपदा को संरक्षित करती चलती है । सृष्टि के जिस–जिस भू–भाग पर मानव पहुँचा है वहाँ–वहाँ भाषा भी परछाई की तरह अपने आप पहुँची है । इसलिए भाषा के संदर्भ में अक्सर कहा जाता है कि भाषाएँ ही एक तरह से विश्व संस्कृति की संवाहिकाएँ हैं । यदि भाषा ही न होती तो पारस्परिक संपर्क असम्भव है । चाहे वह विश्व की कोई भी भाषा क्यों न हो किसी न किसी रूप में सभी को एक दूसरे से जोड़े रहती है । साहित्य सूजन एक कर्म न होकर सबका हित और सभी को एक सूत्र में पिरोए हुए चलती है । साहित्य मात्र ज्ञान–राशि का संचित कोश न होकर आधुनिक संसाधनों के जरिए विश्व पटल पर मीडिया और इंटरनेट के माध्यम से जग को को मुठ्ठी में कर लिया है। जिसमें साहित्य, मीडिया और समाज की अहम भूमिका है । साहित्य के जरिये जिस सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति होती है । वह केवल मानव के चित्र वृत्तियों को ही नहीं, समाज के जीवन्त रूपों को निरंतर उद्घाटित करती चलती हैं । जैसा कि कहाँ गया है – ''जाति विशेष के उत्कर्षापकर्ष का उसके उच्च– नीच भावों का उसके धार्मिक विचारों और सामाजिक संगठन का उसके ऐतिहासिक घटना चक्रों और राजनीतिक स्थितियों को प्रतिबिम्ब यदि कहीं देखने को मिल सकता है तो उसके ग्रन्थ साहित्य में मिल सकता है । सामाजिक शक्ति या सजीवता, सामाजिक आसक्ति या निर्जीवता और सामाजिक सभ्यता तथा असभ्यता का निर्णायक एक मात्र साहित्य ही है । जिस जाति विशेष में साहित्य का अभाव या उसकी न्यूनता आपको दीख पड़े आप निस्संदेह निश्चित समझिए वह जाति असभ्य किंवा अपूर्ण सभ्य है । जिस जाति की सामाजिक व्यवस्था जैसी है उसका साहित्य भी वैसा ही होता है ।'' [1]महात्मा गांधी जी ने इसलिए विश्व बन्धुत्व की भावना को सर्वोपरि एवं महत्वपूर्ण माना । वैश्विक स्तर पर समय–समय होने वाले अत्याचारों के खिलाफ एक देश ने ही नहीं अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र ने हर तरह से संघर्ष किया। मानवी एकता और संस्कृति को रूपायित करते हुए । छायावादी कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने ठीक ही लिखा है–

''हों शांत जाति विद्वेष, वर्गगत रक्त समर,
हों शांत युगों के प्रेत, मुक्त मानव अन्तर,
संस्कृत हों सब जन, स्नेही हों सहदय सुन्दर,
संयुक्त कर्म पर विश्व सकता हो निर्भर।।'' २

अनेकता में एकता का नारा बुलंद करने वाले भारत की सांस्कृतिक समन्वय बेजोड़ हैं। वैश्विक स्तर पर भी भारतीय संस्कृति अपनी आभा फैलाए हुए हैं । भारतीय संस्कृति के महत्व को रेखांकित करते हुए डॉ. मुकेश प्रसाद ने लिखा है "भारत एक प्राचीन संस्कृति वाला देश है क्योंकि भारतीय संस्कृति के मौलिक सिद्धान्त आज भी वही हैं, जो प्राचीन काल में थे । इसने संसार, की प्रायः सभी संस्कृतियों का उत्थान एवं पतन देखा है । अन्य संस्कृतियों का जो भी प्रभाव इस पर पड़ा है उससे यह और भी समृद्ध हुई हैं । आध्यत्मिक मूल्यों एवं अनुकूलन शीलता व साहिष्णुता के कारण यह आज भी राजनीतिक आधार पर न होकर सांस्कृतिक आधार पर होती रही है तथा इसमें राजनीतिक, सांस्कृतिक, लौकिक व आध्यत्मिक पक्षों में निरन्तर अन्तः क्रिया के कारण ही इसकी निरन्तरता बनी रही है । राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति का एक अभिन्न अंग है । यह राजनीतिक व्यवस्था के प्रति व्यक्तियों के विश्वासों मनोवृत्तियों, मूल्यों एवं व्यवहार का योग है । अन्य शब्दों में राजनीतिक व्यवथा एवं राजनीति से संबंधित व्यक्तियों के दृष्टिकोणों, विश्वासों एवं भावनाओं के मिश्रित रूप को ही राजनीतिक संस्कृति कहा जा सकता है ।"३ सामाजिक विषमता और अन्याय से न केवल जीवन रस ग्रहण करती है बल्कि हर तरह से पोषित भी करती रहती है । प्रेमचन्द जी ने इसीलिए साहित्य को राजनीति के आगे चलने वाली मशाल की तरह है । कदाचित वर्तमान परिदृश्य में प्रेमचन्द को अपनी बात में काफी संशोधन करना पड़ता । साहित्य जहाँ अन्तः संगठन का माध्यम है वहीं कभी–कभी लगता है । राजनीति समाज–संगठन का एक घटक है । साहित्य और राजनीति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध परिलक्षित होता है । वहीं साहित्य ज्यादा प्रभावी और अनन्त रहा है जिसके केन्द्र में स्थायी भाव रहा है । वहीं भाव साहित्य के माध्यम से उदात्त पक्ष को उद्घाटित करते हैं ।

साहित्य और राजनीति के समकालीन परिदृश्य को रेखांकित करते हुए अजय तिवारी ने लिखा है – ''साहित्य भी

RRIJM 2015, All Rights Reserved

ऐसा कोई पवित्र क्षेत्र नहीं है जहाँ कलुषता और क्षुद्रता का स्पर्श न हो । तात्कालिक और सामाजिक परिस्थितियाँ और कला को भी प्रभावित करती है । जो साहित्य इन प्रभावों और दबावों को झेलकर उसका अतिक्रमण करता है, वह स्थायी और अनन्त होता है । जो साहित्य उन प्रभावों और दबाबों से किनारा कर लेता है, वह चमक दिखाकर बुझ जाता है । स्थायी–भावों वाला रीतिकाव्य राजनीति के (राजदरबारों के) बीच, उस पर आश्रित रह कर लिखा गया है । जिन सन्तों को सीकरी से काम नहीं था, उनके साहित्य भी ज्यादा मूल्यवान हैं। आधुनिक युग के कई लेखक–कवि राजनीति में धँस रहे हैं । उस दबाब को रचना से परे रखने पर उन्होंने निर्जीव कृतियाँ दीं । मोहभंग की स्थितियाँ आने पर उन्हें मगध की विचार शून्यता का भास होता था । उनका कौन–सा साहित्य महत्वपूर्ण है, कौन–सा नहीं, यह विदित है । गालिब सबसे बड़े उदाहरण है । वे हर स्थिति का सामना करते हैं, तात्कालिक वस्तुस्थिति को झूठलाना या दरकिनार करना उनका कवि–स्वभाव नहीं है।

दुनिया में हूँ, दुनिया का तलबगार नहीं हूँ,
बाजार से गुजरा हूँ खरीदार नहीं हूँ ।'' ३

आज हम देखते हैं कि पूँजीवाद और उत्तर आधुनिकतावाद आज एकही सिक्के के दो पहलू के रूप में नजर आ रहे हैं । राजनीति, संस्कृति और बाजार के इस त्रिकोण में उतरोत्तर अपने को समाहित करता चला जा रहा है । वर्तमान सामाजिक स्थितियों में पूँजीवादी व्यवस्था ने दिन पर दिन व्यक्ति को मुक्त अर्थात् स्वतंत्र कर दिया है । नये संचार माध्यमों ने बाजार को बढ़ावा देने हेतु नयी संस्कृति भी निर्मित करता जा रहा है । यह विज्ञापन चाहे फैशन, क्रीम, तेल, फूड, देह आदि का ही क्यों न हो । धड़ल्ले से हो रहे विज्ञापनों ने मनुष्य की सोच को न जाने कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया है । नए –नए उद्योग और बाजार ने न केवल संस्कृति की परिभाषा को अपितु उसके विविध आकार लेते स्वरूप को बदल दिया है।

वैश्वीकरण और उदारीकरण के युग में टी.बी और इंटरनेट विज्ञापन के नाम पर न केवल सूचनाएँ देता है बल्कि मोहनी की भाँति उन अनावश्यक उत्पादों को खरीदने हेतु बाध्य कर रहा है । सांस्कृतिक बदलाव को रेखांकित करते हुए भी विजयमोहन सिंह ने बड़ी ही सटीक बात कहीं है – ''संस्कृति का कार्य व्यक्ति या समाज को सुसंस्कृत बनाना नहीं रह गया है । राजनीति की तरह संस्कृति आज उद्योग बन गयी है । यही कारण है कि संसार के बड़े–बड़े औद्योगिक घराने बड़े पैमाने पर सांस्कृतिक उद्योग पर निवेश करने लगे हैं । आज पूँजी के निवेश की दिशाएँ बदलने लगी हैं । वे उत्पादक वस्तुओं की और से स्थानान्तरित होकर संचार साधनों तथा संचार माध्यमें पर पूँजी निवेश की दिशा में बढ़ रही हैं। सांस्कृतिक उद्योग बहुत बड़ा व्यापार बन गया है । इसका बहुत बड़ा उदाहरण आज बनने वाली ''शैरेट'' फिल्में है । फिल्म निर्माण पर अकूत धन व्यय किया जा रहा है । एह हद तक फिल्म उद्योग से ही जुड़ा हुआ दूसरा तथाकथित सांस्कृतिक उद्योग विज्ञापन उद्योग है।" ५उदाहरण के तौर पर ''शैरेट'' जेसी फिल्मों को देखा जा सकता है।

वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण के दौरे में हिन्दी की महत्ता स्वयं उजगिर हो गई है । प्रेमचंद, प्रसाद, निराला, यशपाल आदि के द्वारा प्रयुक्त हो रहे हिन्दी का स्वरूप वह नहीं है जो हमें संचार माध्यमों में दृष्टिगोचर होता है । भूमंडलीकरण के दौर में राजनीतिज्ञ ही है। उद्योगपति भी भली भाँति भिज्ञ हो गये हैं कि हिन्दी के बगैर अब उनकी दाल गलने वाली नहीं हैं । बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भी इस सच से वाकिब हो चुकी हैं कि भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ हिन्दी बोलने वाले अधिक हैं । भारतीय बाजारों पर अधिपत्य जमाने के लिए हिन्दी को वैश्विक स्तर पर अपनाएँ जाने में ही भलाई है । वरना भारतीय बाजार में टिक पाना कठिन है। गिरमिटिया बनाकर जाने वाले प्रवासी भारतीय जो मॉरीशस, सूरीनाम, फिजी, गयाना आदि देशों में गए उनके साथ जाने वालों की सुख–दुख की भाषा हिन्दी ही थी । सचमुच में विश्वस्तर पर हिन्दी को पहुँचने में इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

''आज धर्म, दर्शन, राजनीति समाज व्यवस्था शंका के दायरे में आ गए हैं । यथार्थ का परीक्षण करते संदेह और विद्रोह लेखक के अस्त्र बन गए है, जबकि भारतीय दर्शन और चिंतन सत्यों को जिज्ञासा के माध्यम से खोजता रहा है यहाँ का सामाजिक जीवन और उससे निर्मित हुई संस्कृति का चरित्र मुख्यतः समन्वयात्मक समाजपेशी रहा है । अतएव उसका प्रतिविम्बित करने वाले साहित्य की भी मुख्य प्रवृत्ति समन्वय समावेशी की रही । यहाँ की संस्कृति, समाज और साहित्य में समन्वयात्मक प्रवृत्ति की प्रधानता रही है, जबकि पश्चिम परम्परा में उसका अभाव रहा है । किन्तु भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय इतिहास, संस्कृति, साहित्य सबको देखने समझने की दृष्टि का पश्चिमी करना शुरू किया और हम अपने जातीय परम्परा संस्कृति, साहित्य, इतिहास बोध की स्वदेशी चिंतन परम्परा से उखड़ते गए ।" ६

इस प्रकार हम देखते हैं कि भूमंडलीकरण के दौर में सभ्यता और संस्कृति का वर्चस्व दिन पर दिन बदता ही जा रहा है।परिणाम स्वरूप हम आर्थिक सरहदें तो पार करते जा रहे हैं पर हमारा साहित्य, समाज, और संस्कृति भूमंडलीकरण के प्रभाव से जिस दौर से गुजर रहा है। निश्चय ही विचारणीय और चिन्तनीय है । कई बार ऐसा लगते लगता है कि संचार माध्यमों ने वैश्विक स्तर पर हमें जितना नजदीक कर दिया है । आज एक साथ रहते हुए आन्तरिक रूप से हम एक–दूसरे से काफी दूर भी होते जा रहे हैं । हमें यह भी प्रयास कना होगा कि साहित्य, समाज और संस्कृति के जरिए हम सब में आपसी तारतम्यता बनी रहे। विश्व में भारत का पंचम सदेव

अपनी आभा विखेरते रहे। यह सम्भवतः तभी सम्भव होगा जब हम हिन्दी के रथ पर सवार होकर विश्व मंच पर विश्व भाषा के रूप में हिन्दी को प्रतिष्ठित कर पायेंगे।

सन्दर्भ

१. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी प्रतिनिधि संकलन, पृष्ठ स ०२
२. सुमित्रानन्दन पन्त, रश्मिबन्ध , पृ. सं. ८३
३. वाद–संवाद सं. डॉ. राम रतन प्रसाद अंक ६ जनवरी–मार्च २०१६ पृ. ६३
४. नया ज्ञानोदय, सं. रवीन्द्र कालिया अंक ८६ अप्रैल २०१० पृ. ६३
५. वही पृ. ६६
६. भूमंडलीकरण – डॉ. शशि भूषण कुमार शशि पृ. ५२

RRIJM 2015, All Rights Reserved